कृष्णा सोबती
Krishna Sobti

सुश्री कृष्णा सोबती, जिन्हें साहित्य अकादेमी आज अपने सर्वोच्च सम्मान, *महत्तर सदस्यता*, से विभूषित कर रही है, हिन्दी की अग्रणी कथाकारों में सर्वमान्य हैं।

आपका जन्म 1925 ईस्वी में गुजरात (अब पाकिस्तान में) में हुआ। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा वहीं हुई और इसके बाद हिमाचल, पंजाब और दिल्ली आपके कार्यस्थल रहे। आपके घर का वातावरण लगभग सामन्ती था—आपके घराने के लोग ज़मींदार और अफसर थे। कृष्णा जी की शिक्षा शिमला, लाहौर और बाद में दिल्ली में हुई। भारत विभाजन के बाद आपने दो वर्षों तक सिरोही (राजस्थान) के महाराज तेजसिंह के लिए गवर्नेस पद का उत्तरदायित्व सँभाला। बाद में आपने विभिन्न स्थानों पर अध्यापन कार्य किया और इसके बाद दिल्ली प्रशासन के अधीन प्रौढ़ शिक्षा विभाग की सम्पादिका के रूप में आप 1980 तक कार्य करती रहीं। इसके बाद लेखनी ही आपकी जीवनी और जीविका रही है।

कृष्णा जी ने फुटकर कहानियों के लेखन से अपनी साहित्यिक यात्रा शुरू की थी और बहुत जल्द आपने इस क्षेत्र में अपनी पहचान बना ली। आरम्भिक कहानियों के प्रकाशन के बाद आपका पहला उपन्यास *डार से बिछुड़ी* (1958) प्रकाशित हुआ और इसके कुछ वर्षों के बाद *मित्रो मरजानी* (1966), *यारों के यार* (1968) और *तिन पहाड़* (1968) ने तो समकालीन हिन्दी उपन्यास लेखन के क्षेत्र में एक तरह से तहलका मचा दिया। लेकिन इन साहित्यिक हलचलों से दूर और वादविवाद से लगभग तटस्थ रहकर सोबती जी समर्पित भाव से रचनारत रहीं और *सूरजमुखी अँधेरे के* (1972), *हम हशमत* (1977) तथा *ज़िन्दगीनामा* (1979) ने आपको लेखन की बुलंदियों पर पहुँचा दिया। अपने आरम्भिक उपन्यास *चन्न* (1954) से लेकर *ज़िन्दगीनामा* (1979) के दौरान और इसके पूर्व भारत विभाजन के बाद भारतीय समाज में हो रही उथल-पुथल, मानवीय मूल्यों के विघटन, शोषक और शोषित के बीच खड़ी मजबूत दीवार, सामन्तवादी और नवकुबेर-पंथी मानसिकता और स्त्री-पुरुष की अपनी-अपनी दुनिया को पहचान पाने के प्रयास और उससे जुड़ी समस्याओं की गहरी पड़ताल ने कृष्णा सोबती के लेखन को सर्वथा नया आयाम दिया। आपके रचनात्मक निकष और निष्कर्ष दोनों ही किसी पूर्व-निर्धारित या आरोपित धारणाओं से नहीं, बल्कि अपने अर्जित अनुभवों की कोख से पैदा हुए हैं।

ज़िन्दगीनामा, जिसका पहला हिस्सा *ज़िन्दा रुख़* के नाम से प्रकाशित हुआ और जिसे साहित्य अकादेमी ने वर्ष 1980 में श्रेष्ठ हिन्दी कृति के

MS. Krishna Sobti on whom the Sahitya Akademi confers its highest honour of Fellowship today is one of the foremost fiction writers in Hindi.

Ms. Krishna Sobti, born in Gujarat (now in Pakistan) in 1925 was brought up and educated subsequently in Shimla, Lahore and Delhi. She belongs to a family whose members were landlords and government officials. After the partition of India, she spent two years as governess to the Maharaja Tej Singh of Sirohi (Rajasthan) followed by some years of teaching.

She worked until 1980 as an editor in the Department of Adult Education under Delhi Administration, and thereafter she has lived on and for writing alone.

She wrote her first short stories at the beginning of 1950's and as such made a distinct mark, particularly with her first novel, *Dar Se Bichhuri* (Separated from the Flock, 1958). Her subsequent works, *Mitro Marjani* (1966), *Yaron ke Yar* (Friends of Friends, 1968), and *Tin Pahar* (1968) appeared almost as sensations in the world of Hindi Fiction. Keeping herself aloof from the turbulence and debates surrounding her works, she went on creating her masterpieces, such as *Surajmukhi Andhere ke* (Sunflowers of the Dark, 1972), *Ham Hashmat* (I, Hashmat, 1977, mainly pen portraits), and *Zindaginama* (The Saga of Life, 1979). Beginning with the early novel, *Channa* (1954) and up to *Zindaginama*, Krishna Sobti has depicted the stir and turmoil in Indian society before, during and after the partition, focussing on the dissolution of human values, on the firm barriers between the exploiter and the exploited, on the feudal and neo-rich syndromes, and above all, on the problematique of man-woman relationship together with the unending search for worlds of their own. Bringing up entirely new dimensions of the problems she touched upon, she has never relied on any pre-determined or pre-ordained yardsticks and conclusions in her narrative strategies. There is a distinct stamp of authenticity on whatever she has created.

Her 1980 Sahitya Akademi Award winning *Zinda Rukh*, the first part of her magnum opus *Zindaginama* is a tale set against the rise of the British Raj (1900-1916) in the

रूप में अपने पुरस्कार से सम्मानित किया, भारत में ब्रिटिश राज के उत्कर्ष काल (1900-1916) की गाथा है, जिसमें चनाब और झेलम नदियों के बीच स्थित देवा जट गाँव के लोगों के हर्ष-विषाद, आनन्द-अवसाद, आस्था और आशंका तथा उनके सच और झूठ का बहुत रोचक और प्रामाणिक अंकन मिलता है। वस्तुतः यह एक ऐसी सामाजिक-सांस्कृतिक कृति है, जिसमें तत्कालीन रीति-रिवाज, रूढ़ियाँ एवं परम्पराएँ तथा घर-आँगन, सहन और दहलीज की ज़ुबान को पहली बार पूरी शिद्दत और बड़ी बेबाकी के साथ प्रस्तुत किया गया है। वहाँ के लोकगीत, उत्सव, अनुष्ठान, भाषा और बोली सब-के-सब जैसे उनकी प्रवाहपूर्ण लेखनी के साथ बहते चले गये हैं।

अपनी एक और विशिष्ट कृति *ऐ लड़की* (1991) में कृष्णा सोबती ने अपनी वैचारिक प्रौढ़ता एवं सत्यबोध को जीवन के निर्मम यथार्थ की पृष्ठभूमि में सँजोया है। यह कृति परम्परा और आधुनिकता के रूपक को दो पीढ़ियों के आत्मसंघर्ष के माध्यम से एक नये संदर्भ में रखने का अनूठा आयोजन है। इसमें मृत्यु शय्या पर लेटी बूढ़ी माँ—शाश्वत और निरंतर प्रवहमान स्रोतस्विनी की तरह अपनी युवा संतति—अपनी ही बेटी को एक विद्रोहिणी के रूप में चित्रित एवं प्रतीकित करती है। जीवन की सफलता और विफलता, उसकी सार्थकता और निरर्थकता-जैसी अवधारणाएँ कभी-कभी अपने सीमित पारिभाषिक अर्थ में कितनी संकीर्ण और संकुचित प्रतीत होती हैं, इसे लेखिका ने अपने जीवन और रचनादर्शन से एक नयी अर्थवत्ता दी है। इसके प्रश्नाकुल संवादों द्वारा उन्होंने व्यक्ति के प्रस्तुत को उस अप्रस्तुत से जोड़ने का सार्थक प्रयत्न किया है, जो अदृष्ट होता हुआ भी हमारे सम्मुख और साथ कहीं अधिक दृढ़ता से उपस्थित रहता है।

कृष्णा सोबती का सर्वाधिक रचनात्मक और प्रभावशाली पक्ष है, उनकी जीवन्त भाषा। *बादलों के घेरे, डार से बिछुड़ी, तिन पहाड़, मित्रो मरजानी, यारों के यार, सूरजमुखी अँधेरे के, हम हशमत, ज़िन्दगीनामा, ऐ लड़की* और उनकी नवीनतम कृति *दिलोदानिश* तक में यह एक बेहद ज़िन्दादिल, आत्मविश्वास से भरपूर एक ऐसी रचनाधर्मी की भाषा है, जो अपने कथ्य, चरित्र, घटना-स्थिति और परिवेश के भी एतबार से न सिर्फ़ अपने बाहरी रंग-रूप से, बल्कि पाठकों के मर्म को भेदने वाले अंदाज़ से लिखी जाती रही है। अपने आंतरिक एवं मौलिक गठन से इस भाषा ने अपनी एक अनोखी और निराली पहचान बना ली है, जिसके कारण उनकी प्रायः सभी कृतियों का एक अलग और विशिष्ट स्थान बना हुआ है, और इन कृतियों के माध्यम से स्वयं लेखिका का अपना शिखर व्यक्तित्व।

कृष्णा जी का रचना-कौशल आपकी रचनाओं और उनमें रचे-बसे चरित्रों को अपने अनुभव द्वारा अर्जित ऊर्जा, जीवंतता तथा निश्चित भूमिका प्रदान करता है। आप अपने समकालीन लेखकों को हैरान ही नहीं, हतप्रभ कर देने वाली सीमा तक आक्रामक होकर भी कभी नकारात्मक नहीं, बल्कि अन्ततः सकारात्मक बनी रहती हैं। यदि कृष्णा सोबती का पाठक समुदाय उनकी हर किताब पढ़ने के बाद चमत्कृत हो उठता है तो इससे किसी को हैरानी नहीं होनी चाहिए। वस्तुतः हिन्दी के समकालीन गद्य लेखन में एक सार्थक एवं रचनात्मक मुहावरे की तलाश कृष्णा सोबती की कृतियों को शामिल किये बिना पूरी नहीं हो सकती। कहना न होगा, कृष्णा जी का लेखन इस संदर्भ में न केवल विरल एवं विशिष्ट है, बल्कि समसामयिक परिदृश्य में श्रेष्ठता का अप्रतिम उदाहरण भी है।

पिछले पाँच दशकों से अपनी रचनाधर्मिता को निरंतर नया आलोक और आयाम प्रदान करने वाली कृष्णा सोबती जी के लिए साहित्य जीवन

Punjab. People occupying the midlands between Chenab and Jhelum rivers in the village of Deva Jat come alive therein with all their loves and hatreds, joys and tragedies, self-confidence and despair, truths and falsehoods. It is a remarkably colourful and true to life depiction. This perhaps is the first socio-cultural work of its kind that reconstructs the contemporary customs, rituals, traditions and the dialects of home and hearth in an acute and frank manner. She has taken everything in her sweep—the folksongs, the festivals, the manners, and above all, the multiverse of speech of this region.

In yet another distinct work, *Ai Ladki* (O! Girl, 1991), Krishna Sobti brings into relief her mature perception against the unsentimental rock of realities. This indeed is a unique metaphor for two generations of, tradition and modernity in a new context of feminist awareness, bringing out the conflicts of the inner self. The mother on her death-bed is face of face with a different rebellious incarnation of her own self in the form of her daughter. With her own insights and creative philosophy, the writer has given a new lease of life of the old and perennial queries regarding the sense and nonsense of the business of living breaking down the rigid formulations and definitions.

One of the most creative and impressive aspects of Krishna Sobti's writings is its lively language. ***Badalon ke Ghere, Dar se Bichhuri, Tin Pahar, Mitro Marjani, Yaron ke Yar, Surajmukhi Andhere ke, Ham Hashmat, Zindaginama, Ai Ladki*** and her most recent novel ***Dil-O-Danish*** (Heart and Mind) are enriched by the language of a lively and self-confident writer, adept at touching the chords of her readers, true and appropriate to the content, characters, events, situations and environment of her narratives. This language—in its varied registers—has carved out a place for itself through its internal and original consistency. All her works occupy a distinct space and place in the annals of literature alongwith the creator herself.

Among her contemporaries, Krishna Sobti is devastatingly outspoken and yet her approach always is positive not negative. It is not surprising that the vast community of her readers is wonder-struck by each of her works. As a matter of fact, the world of contemporary Hindi prose cannot attain any completeness without counting her in. It goes without saying that her writing is not just unique and distinct, but it is also a measure of excellence.

Renewing at every step her five-decade-long creativity with fresh insights and dimensions Krishna Sobti has regarded literature as the true play-field of life, and she has held a formidable mirror to this life. Life, for her, is not an un-problematized flow of some singular theme—she has looked at it as a concantation of questions and departures, a veritable collation of crafts, techniques and styles. It is this polymorphy, this diversity expressing itself through a range of colours, forms, pains, sympathies, empathies, compassion, rise and fall which provides her fiction with its primal source of energy. She has

का सच्चा परिदृश्य रहा है—और इस जीवन का दर्पण उनका लेखन रहा है। उनके लिए जीवन सिर्फ़ एक विषय-वस्तु नहीं—वह प्रश्नों और प्रस्थानों, शिल्प और शैलियों का समाहार या समुच्चय रहा है। यही वैभिन्य और वैविध्य—जो कई रंगों-रूपों-आकारों-करुणा-वेदना और हर्ष-विषाद तथा उत्कर्ष-अपकर्ष में प्रकट होता है—उनके कथालेखन की ऊर्जा है। जीवन के विभिन्न और विशिष्ट अनुभवों और पहलुओं को गहरी काव्यात्मक संवेदना प्रदान करते हुए—कृष्णा सोबती जी ने अपनी एक-एक रचना को पाठकों के अनुभव और सरोकार का अभिन्न अंग बना दिया है, जो किसी भी रचनाकार के लिए श्लाघनीय कहा जा सकता है। हमेशा की तरह आज भी आपके पाठक आपकी कलम से अनेक अद्वितीय और अनमोल रत्नों की प्रतीक्षा में हैं।

कथाकार के रूप में अपने उत्कर्ष के लिए कृष्णा सोबती को साहित्य अकादेमी, अपने सर्वोच्च सम्मान, *महत्तर सदस्यता* से विभूषित करती है। □

imparted a deep poetic sensibility to the varied and distinct life-experiences and thus each one of her fictional writings has become an integral part of the experiential world and deep concerns. This surely is an achievement any writer would naturally aspire to.

In the long innings of her writing career Krishna Sobti contributed to other media, such as television and theatre and where some of her works and scripts have proved immensely successful. Her readers as usual look forward to many more uniquely crafted masterpieces of fiction from her pen.

For her eminence as a fiction writer, the Sahitya Akademi confers its highest honour, the Fellowship on Krishna Sobti. □

स्वीकृति वक्तव्य

कृष्णा सोबती

साहिबे सदर, श्रीमान अनंतमूर्ति साहिब और दोस्तो, आप सबके सान्निध्य में मेरे निकट आज की यह शाम गम्भीर है, ख़ास है और विशेष भी। इतिहास और भूगोल के जिस लम्बे वक़्त को मैंने अपने अन्दर और बाहर जिया है, उसमें किसी औपचारिक 'विशेष' की जगह तो कमतर ही रही है। कह सकती हूँ—अनुभव के स्तर पर जिसे मैंने अपने लेखन में अंकित किया है, वह 'साधारण' का ही विशेष है। श्रीमान, मैं आज के 'विशेष' से, जो आप द्वारा 'सम्बोधित' किये जाने पर महसूस कर रही हूँ, इससे आँखें नहीं चुरा रही, मैं पाठक और लेखक, श्रोता और वक्ता के सहभाव से राष्ट्र की बौद्धिक बिरादरी में प्रवेश करती हूँ! महत्तर सदस्य के रूप में पुकार ली गयी हूँ, इसलिए कृतज्ञ हूँ।

व्यक्तिगत रूप से आज का घटित होना, मेरी लेखकीय संहिता और उससे जुड़े बुनियादी मूल्य—आस्था और विश्वास को आश्वस्त करता है। श्रीमान, जिन साहित्यिक मूल्यों की अपेक्षा आशा इस वरिष्ठ बिरादरी के महत्तर सदस्य से की जाती है, मैं भरसक उस गरिमा को बरकरार रखूँगी।

ज़िन्दगी में जो सैद्धान्तिक चुनाव मेरे कार्यकारी रचनात्मक आग्रहों के अंग रहे, वे आज भी मुझे अपने लेखक के सन्दर्भ में खरे और अर्थवान लग रहे हैं। मैंने बराबर की निगाह से अपने 'साधारण' और लेखक के 'असाधारण' को अपनी लीक पर रखा, संयम से अनुशासन में कसा, नम्रतापूर्वक इतना ही कि यह मेरी कलात्मक अभिव्यक्ति की ज़रूरत रही। विपरीत दिशा से इन दोनों की ओर से बराबरी का अहसास और दबाव मेरे सर्जक की सुरक्षा और विशिष्टता के लिए अनिवार्य था। विशेषज्ञ इसे बारीक़ी से कैसे भी जाँचें, अरखें-परखें, मैं इतना जानती हूँ कि मेरा बौद्धिक औदार्य जीवन के साधारण और विशिष्ट के लिए एक-सी जिज्ञासा और दिलचस्पी का स्रोत रहा है। दोनों के स्थूल और सूक्ष्म की सम्पदा मेरे अनुभव-संसार का विस्तार है।

साहित्य के चिरन्तन द्वार पर खड़ा लेखक प्रतिभा, परिश्रम और सर्जन को कितने बड़े परिप्रेक्ष्य से निहारता है, मात्र अपने पर दृष्टि न केन्द्रित कर अपने प्राचीनों को कैसे स्वीकारता है, समकालीनों से कैसे रिश्ते तय करता है, नये और पुराने को अपनी सोच में कैसे उतारता है, ढालता है—ये सभी साहित्यिक व्यवहार लेखक से लेखक के अपने सम्बन्धों को मर्यादित करते हैं; संयमित करते हैं।

शताब्दी की पहली चौथ में जन्मी पीढ़ी के रूप में मैंने साहित्यिकारों की एक बड़ी बिरादरी को जाना है। सोच कर अच्छा लग रहा है कि इन मित्रताओं की सम्पन्नता से मैंने अपने साहित्यिक व्यक्तित्व को सँवारा है। उनसे बहुत कुछ सीखा है, पाया है और अपनी मनोभूमि में जज़्ब किया है।

लेखक की अन्तर्दृष्टि इस लोक की निरन्तरता और इसी में पनपती देह-धर्म की नश्वरता में मानवीय अस्तित्व के लिए अमरत्व को ढूँढती है। लेखक कलाकार चित्रकार संगीतकार उन तरंगों को पकड़ लेना चाहते हैं, जो अनश्वरता का आभास देती हैं; ऊर्जा और प्रकाश देती हैं। यह चैतन्य प्रवाहित है साहित्य की सभी दिशाओं में। इस लोक की पुरानी, प्राचीन आदिम आहटों की सरसराहट, कोलाहल, शोर, जो मानवीय संवेदन द्वारा अंकित होता रहा है—न हारने वाली, न मरने वाली चुनौती से समर्पित होता रहा है! हर बार, बार-बार, नाद में, सुर ताल में, शब्द में, भाषा में, अर्थ में। साहित्य की अजस्र प्राणधारा गहनता में सतत विचार है। विचार से जुड़ी अनुभव की सादी सघनता, जिये हुए, जाने हुए की प्रामाणिकता रहस्य की कल्पना—सभी अपनी गूँथ में साहित्य को जीवन की प्रखरता देते हैं। गरमाहट और ऊर्जा। स्फुरण और गतिशीलता।

रचना, कभी जाने, कभी अनजाने, किसी एक मुबारक क्षण में रचनाकार के दिल दिमाग़ पर दस्तक देती है। कभी दबे पाँव एक छोटी-सी आहट, जैसे कविता की आधी पंक्ति, टुकड़ा—उस पर वह लम्बा क्षण—ज्यों दूसरा बंद लिखने के लिए एक और जिन्दगी गुज़र जाय! कभी आँख के आगे कोई लौ-सी झिलमिलाय—चाहे कि लपक कर पकडें और वह गुम हो जाय! फिर वही बाट-फिर वही प्रतीक्षा! इस प्रतीक्षा की सम्भावनाएँ असीम हैं। लेखक की सीमाएँ और क्षमताएँ भी!

इन दोनों की ओर से एक दूसरे पर दबाव हैं। तनाव हैं। वह एक दूसरे के आतंक में एक दूसरे को घूरते हैं। कभी-कभार अपने-अपने अर्जित अधिकार में वे एक दूसरे का अतिक्रमण भी करते हैं। इस अतिक्रमण का हश्र क्या होता है, इसकी अनुभूति भले लेखक को हो, इसकी प्रतीति सिर्फ़ आलोचक और पाठक को होती है। लेखक तो अपनी रौ में अपने दिन रात को एक किये रहता है, गूढ़ पद से बेख़बर कृति और कृतिकार का खेल नाजुक-सा मगर ख़तरनाक, खेले चला जाता है, इस विश्वास के साथ कि मैं ही हूँ वह 'विशेष', जो शेष नहीं होते।

लेखक अपने व्यक्तित्व में जाने क्या-क्या उगाता है, संचित करता है, ख़र्च करता है, गुणा करता है, विभाजन करता है। भूलता है, फिर याद में लौटा लाता है। अपने को खो देता है, फिर अपने को ही भीड़ में ढूँढ़ने जाता है। लौटता है तो अकेला नहीं होता। उसके साथ उसका पात्र होता है। अनेक गढ़ी और अनगढ़ी शख़्सियतों में जीता लेखक एक ऐसा रूपान्तरण है, जो एक साथ शक्ति खींचता है और शक्ति देता है।

मित्रो, हम अपने को कुछ भी मानें—कलाकार विचारक, चिन्तक, कवि, उपन्यासकार, नाटककार—हम अपने समाज, देश और राष्ट्र के संस्कार

से जुड़े हैं; उसकी जड़ों में से उगे हैं। समाज देश काल में हो रहे परिवर्तनों की टकराहट, जो हर क्षेत्र, हर प्रदेश में लक्षित है, जो व्यक्ति के 'स्व' को बदल रही है; क्या वह मात्र भूमण्डलीयकरण का परिणाम है? व्यापारिक व्यावसायिकता ने मानवीय मूल्यों को गहरे तक झँझोड़ दिया है। त्रस्त होने और त्रास से आतंकित होने की विभीषिका को, इन्सान ने अपने हक में प्रश्नचिह्न लगा दिया है। विचारधाराओं से सरककर क्या किसी योजना के तहत सहनशीलता धीरज का अवमूल्यन कर दिया गया है? अंतर्राष्ट्रीय बाज़ार संस्कृति अपने तमाम संवेदन से जिन सुविधाओं के सम्पन्नता का प्रसारण कर रही है, वह क्या हमारी संस्कृति के गहन मूल्यों को लील लेगी? तकनोलॉजी अब विश्व की नयी माइथोलॉजी है। धर्म प्रेस है। ऐसे में हम किस समन्वय और सन्तुलन की ओर अग्रसर होंगे। हमारा अगला समय हमारे आज के समय से अलग होगा—इतना तो तय है।

विज्ञान व्यवस्था राजनीति, विश्व तंत्र नये चौखटों में किस तीव्र गति से पैठ रहे हैं, यह हम पर उजागर है। इससे जुड़ी चिन्ताएँ गहरी हैं और पेंचीदा भी। भारतीयता में गहरी आस्था रखने पर भी क्या अन्तरिक्षी पर्यावरण में हम पुरानी आत्मा से निर्देश लेंगे? ले सकेंगे? क्या लेखक के 'स्व' में हम नये परिवर्तन नहीं देखते? परम्परागत मूल्यों और आदर्शों के अवमूल्यन से क्या हम ऐसी कार्यकारी लेखकीय संस्कृति का रूप निर्धारित कर सकेंगे, जहाँ साहित्यकार का संस्कार और स्वाधीन गरिमा सुरक्षित रह सकेगी? लेखक के अनुशासन के लिए सबसे बड़ा खतरा उस सुयोजित और नियंत्रित जानकारी के हवाले से भी है, जो प्रतिभा के प्रकृति प्रदत्त गुण तक को ख़ारिज कर सकेंगे!

विज्ञान द्वारा प्रकृति के विभिन्न रहस्यों का उद्घाटन और गहनतर हस्तक्षेप क्या शारीरिक संरचना और व्यक्ति के अन्तरतम संवेदों को न परिवर्तित करेगा? कविता की भाषा, उसकी गूँथ को न बदल देगा? कविता आज ड्रग्स का सामना कर रही है। उसकी आन्तरिक शक्ति है, जो अपनी ही ऊर्जा से हारे हुओं का सम्बल है। इस नितान्त महत्त्वपूर्ण का संकेत इतना कि हम तक पहुँचने वाले जो दबाव हैं, वे दूर की मार करने वाले परिप्रेक्ष्य-अस्त्रों की तरह हैं! मनुष्य की प्रकृति, शरीर की ऊष्मा, आत्मा की संदिग्धता और विवेक की शुभ्रता भी क्या परिवर्तन की ओर ढुलक रहे हैं?

श्रीमान, मनुष्य और ईश्वर के बीच जो साहित्य की अविरल धारा बह रही है, वह अपने पारदर्शी निर्माल्य में उसी रूप में बहती रहेगी। क्या प्रकृति के हर रूप-रंग-आकार के कण-कण की खोज में ज्ञान-विज्ञान बारीक़-से-बारीक़, सूक्ष्म-से-सूक्ष्म संवेद, अनुभूति को आविष्कार और अन्वेषण का रसायन पलट देगा? मैं और मेरे को उस दूसरे में बदल देगा, जिसका सम्पूर्ण अस्तित्व किसी 'रिमोट' के हाथ में होगा।

श्रीमान, अपने लेखक के सन्दर्भ में अपनी स्त्री संज्ञा को अदेखा करना उचित न होगा। स्त्री-रूप में मैंने बहुत कम-सी भूमिकाएँ निभायी हैं। हाँ, अपपुरुष लेखक होने के बावजूद वह सब देखा जाना और किया है, जो लेखक का दायित्व है! विनम्रतापूर्वक कहना चाहती हूँ लिखना मात्र कलम की मदद से लिखना ही नहीं—लिखना जीवन है और लेखक एक जीवन-शैली। बुद्धिजीवी होने का सम्बन्ध 'अ' और 'ई' से नहीं, बौद्धिक होने से है।

दोस्तो, अध्यक्ष महोदय के, लेखक अनंतमूर्ति के प्रसंग से अपनी अन्तिम बात कहने की धृष्टता करूँगी। बरसों पहले नेपाल में एक बड़ी खिड़की की फ्रेम में से इन्हें हिमालय की बर्फ़ीली चोटियों को निहारते देखा था। नतमस्तक। अवाक्। हर भारतीय हिमालय की धवल शुभ्रता को जन्म-जन्म के पिछवाड़े से देखता है।

मैं भी इस सभागार के पार हिमालय को देख रही हूँ। धन्यवाद! □